समकालीन इतिहास

अफगानिस्तान में अमेरिका की पराजय

अमेरिका और अन्य सभी साम्राज्यवादी भी इस बात को फूटी आंखों नहीं देखना चाहते थे कि तेल की कीमतें बढ़ें, उनकी तेल कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण हो और तेल उत्पादक देश उनके चंगुल से मुक्त हों।

लेकिन 1988-89 और इसके बाद के घटनाक्रमों ने एक बार फिर अमेरिकी साम्राज्यवाद की महत्वाकांक्षा को बढ़ाने का काम किया। उसकी योजना के मुताबिक अरब देशों में एक-एक करके 'लोकतंत्र' लाने का षडयंत्र शुरू हो गया। उसका लठैत इजराइल वहां पहले से मौजूद था ही। उसने उन देशों में सीधे दखलन्दाजी करने का मन बना लिया। इसी बीच 11 सितंबर 2001 को अमेरिका के व्यापार केन्द्र व पेण्टागन पर जहाज टकराए और अमेरिका को एक बहाना मिल गया। सभ्यताओं के टकराव का सिद्धांत पेश किया गया जो साम्राज्यवादियों और दुनिया भर के ठगों के लिए बहुत लाभकारी है और उनके शोषण, लूट-खसोट, दमन-उत्पीड़न को छिपाने के लिए पर्दे का काम करता है। पता नहीं हटिंगटन भी इतिहास के अंत की घोषणा करने वाले फूकोयामा की तरह ही साम्राज्यवादियों का वेतनभोगी है या कुछ और? जो भी हो, उसका यह ऐतिहासिक सिद्धांत अमेरिका या साम्राज्यवादी समूह की सेवा तो करता ही है।

अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने अफगानिस्तान पर अपनी पूरी ताकत और आधुनिकतम हथियारों के साथ हमला बोला तथा अपनी पूरी शारीरिक शक्ति अफगानिस्तान में झोंक दी। अफगानिस्तान तबाह हो गया। बमवर्षकों ने खेतों-खलिहानों, खूबसूरत वादियों, पहाडियों और शहरों को धूल में बदल दिया तथा अफगानी जनता के लिए कहर बन गए। बिन लादेन और मुल्ला उमर जैसे सिरफिरे लोगों ने अमेरिका को इस काम के लिए मानो न्यौता दे दिया हो-आ बैल मुझे मार। लेकिन कहर तो अफगानी जनता पर बरपा।

इराक के सद्दाम हुसैन की एक भूल ने अमेरिका को दूसरा मौका दिया। यह सही है कि कुवैत इराक का एक हिस्सा था और उपनिवेशवादियों ने ही उसे एक अलग राज्य बनाया था। यह भी सही है कि कुवैत ने अमीरा-उमरा अमेरिका साम्राज्यवाद के हिमायती और वफादार हैं और उनके पेट्रोडॉलर अमेरिकी बैंकों में जमा होते हैं। सद्दाम हुसैन ने अपनी शक्ति का गलत अंदाजा लगा लिया और वह कुवैत पर आक्रमण कर बैठे। कुवैत, साउदी अरब, कतर और खाड़ी के सारे प्रतिक्रियावादी शेख-उमरा भयाक्रांत हो गए और अमेरिकी सेना से गुहार लगाने लगे। सद्दाम हुसैन की शक्ति इतनी ज्यादा नहीं थी कि उपनिवेशवादियों द्वारा किए गए सभी कुकर्मों को ठीक कर लें। चीन आज एक बहुत ही ताकतवर देश है लेकिन वहां के शासकों ने ताइवान पर आक्रमण करके उसे अपने देश में नहीं मिलाया। कुवैतपर इराकी हमले का लाभ उठाकर अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने पहले इराक पर छोटा हमला किया और उस पर प्रतिबंध लगाए। बाद में सर्वव्यापी हमला बोलकर वहां अपना अधिपत्य जमाने और नई गुलामी थोपने के प्रयास में लग गया। इराक में भी उसने वही किया जो अफगानिस्तान में। बेबीलोन और मेसोपोटामिया की बहुमूल्य सांस्कृतिक विरासत को उसने मिट्टी में मिला दिया और उसके सैनिकों और अन्य अमेरिकियों ने डाकुओं की तरह संग्रहालयों को लूटा। अफगानिस्तान की तरह इराक में भी उसे तात्कालिक सफलता मिली और वहां के शासक वर्ग पराजित हुए।

लेकिन आज अमेरिका एक के बाद एक बहुत बुरी तरह मुंह की खा रहा है। इधर नाटो की सेनाएं हार रही हैं तो उधर अमेरिका की। लेकिन फिर भी इराक को उसने एक भयावह पीड़ा के समुद्र में धकेल दिया है। वहां की जनता के दुख का कोई अंत नहीं है। न जाने कितने बच्चे, बूढ़े, औरत, मर्द, लड़के, लड़कियां मौत के घाट उतार दिए गए हैं या मानसिक सन्त्रास में जी रहे हैं। आज शिया व सुन्नी दोनों एक-दूसरे को दुश्मनों की तरह मार रहे हैं। 100 से ज्यादा लोग रोज ही मारे जाते हैं। कोई भी सुरक्षित नहीं हैं, न शिया और न सुन्नी और न ही कुर्द। कोई भी मारा जा सकता है। रोज वहां अबूगरीब दोहराया जाता है और अमेरिकी क्रूरता का ताण्डव होता है। तीन हजार से ज्यादा अमेरिकी फौज मारे जा चुके हैं। बुरी तरह से हारने के बाद बुश अब वहां 21 हजार फौज भेजने की कोशिश कर रहा है। उसके सेनापति कहते हैं कि हम युद्ध नहीं जीत सके। व्यवस्था के उच्च पदस्थ अनुभवी लोग कहते हैं कि अमेरिका युद्ध नहीं जीत सकता। अमेरिका के विश्वस्त अनुचर टोनी ब्लेयर के सेनापति ने स्पष्ट कहा कि इराक में जाना गलत था और वहां से सेना वापिस बुलानी चाहिए। बुश और ब्लेयर दोनों ही रोज थूकते और चाटते हैं। उसके बहुत ही भरोसेमंद मित्र और निष्ठावान सहयोगी जापान का रक्षामंत्री कहता है कि इराक में जाना गलत था। अमेरिका धमकी दे चुका है कि जापान का रक्षामंत्री यदि ऐसा बयान देता रहा तो आगे होने वाली रक्षामंत्रियों और विदेशमंत्रियों की बैठक रद्द कर दी जाएगी। दुनिया भर के लोग अमेरिका की इराक में मौजूदगी का विरोध कर रहे हैं। जो मुंह पर नहीं बोल सकते वे भी विरोध कर रहे हैं। अमेरिका की जनता भी इसका विरोध कर रही है। वियतनाम युद्ध का प्रतिवाद करने वालों में अग्रणी और बहुत ही मुखर जेन फुण्डा आज इराक युद्ध के विरोध में सड़क पर उतर आयी हैं और उन्होंने कहा है कि 34 वर्षों बाद वह अमेरिका द्वारा संचालित युद्ध में सड़कों पर उतरी हैं।

बुश कांग्रेस और सीनेट के चुनाव में बुरी तरह हार चुका है। एक आयोग जिसमें बहुत ही विश्वस्त, अनुभवी राजनयिकों और विद्वतजनों को शामिल किया गया था, उसने 6 माह के गहरे और विस्तृत अध्ययन के बाद बताया कि हम युद्ध जीत नहीं सकते। हमें इराक में एक भी सैनिक अड्डा कायम रखने के प्रलोभन और इराकी तेल के लोभ से छुटकारा पाना चाहिए। लेकिन फिर भी शराबी पियक्कड रहा ये मनोरोगी अमेरिका के अधोपतित इजारेदारों के एक समूह के आर्थिक स्वार्थों के लिए जुआ खेलता जा रहा है? अमेरिकी कांग्रेस के आगे गिड़गिड़ाते हुए उसने कहा कि हमें एक मौका और दिया जाए। जाहिर है दो साल बाद वह नहीं रहेगा।

अमेरिकी शासक वर्ग के अनुभवी राजनीतिज्ञों के भीतर नीतिगत विरोध जरूर है लेकिन उनमें कोई बुनियादी विरोध नहीं है। सबका लक्ष्य एक है जिस पर सब एकमत हैं। यह अलग बात है कि जब कोई बुरी तरह फंस जाता है तो दूसरे उसे गाली देते हैं और आलोचना करते हैं। डेमोक्रेटस के बहुमत वाली कांग्रेस में एक ऐसा प्रस्ताव पास करके इराक में अधिक फौज भेजने का विरोध किया गया है लेकिन यह प्रस्ताव बाध्यकारी नहीं है। स्पष्ट है कि कांग्रेस बाध्यकारी प्रस्ताव भी पास कर सकती है। सद्दाम को फांसी पर चढ़ाकर बुश ने बदला तो ले लिया लेकिन मरने के बाद सद्दाम का कद और इज्जत, दोनों ही बहुत बढ़ गए। वह उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के विरोध में लड़ते हुए शहीदों

21 हजार नहीं 21 लाख सैनिक भी इराक की जनता को गुलाम नहीं बना सकते और अफगानों का तो इतिहास ही रहा है कि जब भी उपनिवेशवादियों ने उनकी सरहद में घुसने की कोशिश की तो बहादुर अफगानों ने उन्हें वहीं दफन कर दिया। रूसी साम्राज्यवाद की पूरी ताकत अफगानों को नहीं हरा सकी, उल्टे वह खुद जरूर विघटित हो गई। यह बहुत हाल की बात है।

की कतारों में जा खड़ा हुआ और अरब विश्व की सुन्नी जनता का हर दिल अजीज हो गया। शियाओं के बीच के आम समझदार आदमी भी सद्दाम को फांसी दिए जाने के विरोधी हैं और उन्होंने उसके गम में आंसू बहाए हैं। परम्परागत प्रतिरोध के चलते कट्टरपंथी शियाओं और मुल्लाओं ने फांसी का समर्थन करके अपने दोनों हाथ खून में रंग लिए हैं जिसे दजला-फरात का पानी सदियों तक धोकर साफ नहीं कर सकता। सच है कि धर्मांधता आदमी को पागल बना देती है। आज जिन लुटेरे और हत्यारे अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने शियाओं से मिलकर सद्दाम को फांसी चढ़ाया, वे ही कल सुन्नियों के साथ मिलकर अयातुल्ला सिस्तानी को फांसी पर चढ़ाएंगे। लेकिन ये धर्मांध मुल्ला और उनका अंधानुकरण करने वाले अनुयायी हर चीज को मजहब और फिरके के चश्मे से देखते हैं। मरा हुआ सद्दाम जिंदा सद्दाम से कहीं ज्यादा शक्तिशाली हो गया। सद्दाम का भूत पूरे युद्धक्षेत्र में अमेरिकियों और उनके शिया अनुचरों को सताता रहेगा।

आखिर क्या बात है कि नाटो की सेनाएं, अमेरिका और उसके सहयोगी देशों की सेनाएं अफगानिस्तान और इराक में हार चुकी हैं। यह भी एक तयशुदा बात है कि 21 हजार अमेरिकी सिपाही बढ़ा दिए जाने से भी इराक युद्ध जीता नहीं जा सकता। इसके साथ आधी सदी बाद पहली बार अमेरिकी लठैत इजराइल भी लेबनान में पिटा है। इजरायली शासक वर्गों और उनके राजनीतिक घेरे में पुनर्विचार हो रहा है कि इसके कारणों की तलाश की जा रही है। इतिहास की गति को उसकी अन्तर्धाराओं को, उसकी विकास की दिशा को समझने वाले लोग तो पहले भी जानते थे कि इराक और अफगानिस्तान में अमेरिका और नाटो का हारना निश्चित है। अफगानिस्तान से लेकर बेरूत तक और मध्य एशिया से लेकर अरब देशों और अरब-अफ्रीका तक लोकतंत्र एक मजाक बनकर रह गया है। लोग अमेरिकी मंसूबों को अच्छी तरह से समझने लगे हैं। शोषण, लूट-खसोट, दमन-उत्पीड़न के साथ प्रतिरोध और उसकी शक्तियां भी बढ़ने लगी हैं। जिस आतंकवाद का नाटक रचकर अमेरिकी प्रतिरोध की शक्तियों को तोड़ना चाहता है, आज रक्तबीज की तरह एक के बदले हजार आतंकवादी पैदा हो जाते हैं। उनका जनाधार बढ़ता जा रहा है और उनका नैतिक समर्थन व्यापक होता जा रहा है। छिटपुट आतंकवाद की घटनाएं अब जनप्रतिरोध की अभेद्य दीवार बनकर उठ खड़ी होने लगी हैं और लगातार आक्रामक रुख अख्तियार करती जा रही हैं। आखिर साम्राज्यवादी समूह की विशाल आर्थिक ताकत, उसके आधुनिकतम सैनिक साजो-सामान, उसकी जल, थल और वायु सेनाएं, उसकी समूची ताकत क्यों हार रही है? क्यों इस विशाल युद्ध क्षेत्र में एक नहीं, बहुतेरे इतिहास पुरुष, असंख्य उमर मुख्तार पैदा होने लगे हैं?

अमेरिकी साम्राज्यवाद की इन पराजयों के बारे में ढेर से उपलब्ध तथ्यों, रिपोर्टों, कूटनीतिक वक्तव्यों और सामरिक-तकनीकी ब्योरों में जाकर इससे संबंधित एक ऐतिहासिक घटना के जरिए अपनी बात स्पष्ट करना चाहेंगे। नेपोलियन बोनापार्ट एक विलक्षण प्रतिभा का धनी सैन्य विशारद था। आधुनिक यूरोप ने इससे बड़ी कोई सैनिक प्रतिभा नहीं पैदा की है। टाम पेन अपने युग में एक महान अंतराष्ट्रीय क्रांतिकारी थे जो मूलत: ब्रिटेन के निवासी थे। 1776 की अमेरिकी स्वाधीनता की लड़ाई में वे वाशिंगटन के साथ थे। पर्चे और छोटी पुस्तिकाएं लिखने में उनका कोई सानी नहीं था। जब भी अमेरिकी स्वतंत्रता सेनानी पराजय के करीब होते, वाशिंगटन और उनका नेतृत्व अलग-थलग पड़ जाता तो वाशिंकटन टाम पेन से अनुरोध करते-"टाम पेन एक और पर्चा लिखो।" टाम पेन ने उस समय संकट श्रृंखला-1,2,3...के नाम से पर्चे लिखे जो आज भी पढ़े जाते हैं।

अमेरिकी स्वाधीनता संग्राम में जीत के बाद फ्रांस में हो रही 1789 की क्रांति में शरीक होने के लिए टाम पेन यूरोप चले आए। फ्रांसीसी क्रांति पूरी हो चुकी थी और नेपोलियन बोनापार्ट फ्रांस और यूरोप के बहुत बड़े हिस्से का सम्राट बन चुका था। टाम पेन पेरिस से दूर एक छोटी कुटिया में रह रहे थे और काफी बूढ़े हो चुके थे। हम पहले कह चुके हैं कि टाम पेन मूलत: अंग्रेज थे। यूरोप का शहंशाह नेपोलियन टाम पेन से मिलने उनकी कुटिया में पहुंचा और उनसे पूछा-"महाशय टाम पेन, अगर इंग्लैंड पर हमला कर दिया जाए, तो क्या हम जीत जाएंगे?" टाम पेन का जवाब था-"नेपोलियन, हो सकता है कि एक इंग्लैंड को तुम जीत लो, लेकिन दूसरा इंग्लैंड तुम्हारे साम्राज्य की ईंट से ईंट बजा देगा, तुम्हारी मिट्टी पलीद कर देगा।" नेपोलियन बोनापार्ट अवाक रह गया। इतिहास टाम पेन को दुर्मुख के रूप में जानता है। यूरोप के शहंशाह को ऐसे वचन सुनने की उम्मीद नहीं थी। लेकिन हुआ वही जो टाम पेन ने कहा था। दूसरे यूरोप से अर्थात यूरोप के मजदूरों से, वहां के मेहनतकश अवाम से, वहां की जनता से नेपोलियन बुरी तरह हारा। वाटरलू और सेण्ट हेलेना आज भी इतिहास के हरेक विद्यार्थी की जबान पर होता है।

अमेरिकियों ने बिन लादेन और मुल्ला उमर पर तो जीत हासिल कर ली लेकिन अफगानी जनता नाटो के लिए हर रोज कब्र खोद रही है। ठीक उसी तरह सद्दाम उसकी सेना और सरकार को तो अमेरिका ने ध्वस्त कर दिया लेकिन इराक की जनता उसके लिए रोज कब्रें खोद रही है। अब अमेरिकी साम्राज्यवादियों को तय कहना है कि वे कहां दफन होना चाहते हैं।

21 हजार नहीं 21 लाख सैनिक भी इराक की जनता को गुलाम नहीं बना सकते और अफगानों का तो इतिहास ही रहा है कि जब भी उपनिवेशवादियों ने उनकी सरहद में घुसने की कोशिश की तो बहादुर अफगानों ने उन्हें वहीं दफन कर दिया। रूसी साम्राज्यवाद की पूरी ताकत अफगानों को नहीं हरा सकी, उल्टे वह खुद जरूर विघटित हो गई। यह बहुत हाल की बात है। लेकिन लालच, खुदगर्ज और मगरूर लोग तर्कशक्ति खो देते हैं। वह कहावत बिल्कुल सही है कि प्रतिक्रियावादी ताकतें, प्रगति विरोधी ताकत एक बड़ा सा उत्थर उठाकर अपने ऊपर पटक लेती हैं और अपने विनाश को निमंत्रित करती हैं।

बुश का अंहकार, उसका गुरूर, उसकी हेकड़ी इराकी रेगिस्तान में मोम की तरह पिघलने लगी है। लोकतंत्र और हजारों तरह के ऐसे ही लुभावने नारे के पीछे का छल-प्रपंच, ढोंग-पाखण्ड, सबकुछ बेनकाब हो चुका है। अफगानिस्तान और इराक ने अमेरिकी साम्राज्यवाद की हदें तयह कर दी हैं। अगर इस पियक्कड़ मनोरोगी पर और ज्यादा पागलपन सवार हुआऔर इसने ईरान और सीरिया पर आक्रमण करने या इजराइल से आक्रमण करवाने की कोशिश की तो यह युद्ध क्षेत्र काफी दूर तक फैल जाएगा, देशों और राष्ट्रों की सीमाओं को पार कर जाएगा और दुनिया पर राज करने के अमेरिकी के मंसूबे को हमेशा के लिए दफन कर दिया जाएगा। (समाप्त)

- अरविन्द

पेज 5 का शेष भाग

मायावती और नोटों की माला

मायावती सोनिया गांधी और कांग्रेस को कुछ भी नहीं समझतीं। गत लोकसभा चुनाव के बाद सोनिया ने उनसे मिलने की इच्छा जाहिर की थी और अपने दूतों के माध्यम से उन्हें मिलने का बुलावा दिया था तो मायावती ने उन दूतों से साफ़ कहा था कि अगर उन्हें जरूरत होगी तो वे स्वयं मिल लेंगी, मैं मिलने के लिए उनके घर जाने से रही।

इस तरह मायावती ने अपनी अकड़ दिखलाई। वे आज देश की संभावनाशील नेताओं और नेत्रियों में सबसे बढ़ कर हैं। ऐसी नेत्री ने अगर नोटों की माला ही पहन ली तो क्या हुआ? आखिर 'जनतंत्र' पैसों के बिना तो नहीं चलता।

यहां यह बात भूलने की नहीं है कि देश ही नहीं, विदेशों के कई नेता भी संपदा के मामले में उनसे पीछे हैं। ऐसे नेताओं में अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति जार्ज बुश से लेकर इंगलैंड के प्रधानमंत्री तक थे। इस देश में आय से अधिक संपत्ति के मामले में कई नेताओं पर मुकदमा चल रहा है। ऐसे नेताओं में लालू के साथ-साथ मुलायम भी फ़ंसे हुये हैं। लेकिन मायावती इस जाल में नहीं आ सकीं। या लगता है कि सोनिया गांधी उन्हें इस मामले में फंसाना नहीं चाहती थीं आगे की रणनीति को देखते हुए। लेकिन मायावती को इस मामले में जवाब देना था देश की जनता को। इसलिए उन्होंने साफ़ कहा कि उन्हें इतनी संपदा दलितों ने दी है चंदा उगाह कर। एकबारगी लोगों को यह विश्वास नहीं हुआ। आखिर दलितों के पास इतना धन कहां से आ गया कि उन्होंने मायावती को देश ही नहीं विदेशों के नेताओं में भी अव्वल बना दिया। और अगर दलितों ने मायावती को इतना धन दे भी दिया तो उन्हें नहीं, पार्टी को दिया था। फिर मायावती ने इसे अपनी संपदा कैसे घोषित कर दिया? यहां यह सवाल भी सामने आता है कि मायावती का अपना कोई परिवार तो है नहीं, और एक मायावती करोड़ों-अरबों का धन लेकर तो दुनिया से जायेंगी नहीं।

इसलिए नोटों की माला पहन कर मायावती ने कोई ऐसा काम नहीं कर दिया कि उस पर संसद में बैठे नेता बवाल करें। पहले वे भी अपने गिरेबां में झांक कर देख लें। मायावती अकड़ में हैं और अक्खड़ तो क्या हुआ? जो काम नेतागण चोरी-छुपे करते हैं, उन्होंने वही नगाड़ा बजा कर किया।

-ग़रीबदास